अध्यात्म का महत्व
और
इस्लाम

मौलाना मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

विषय-सूची

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"कृपाशील दयावान अल्लाह के नाम से।"

दो शब्द

जीवन को मात्र भौतिक दृष्टिकोण से देखना यथोचित नहीं। जीवन केवल भौतिकता नहीं। मनुष्य केवल शरीर ही नहीं, वह शरीर के अतिरिक्त भी कुछ है। यही अतिरिक्त वास्तव में मनुष्य की विशिष्टता है। यदि उसे केवल शरीर मान लिया जाए तो उसमें और पशुओं के मध्य कोई तात्विक अन्तर शेष नहीं रहता। सत्य यह है कि भौतिकवाद के द्वारा जीवन और जगत् की व्याख्या सम्भव नहीं।

मनुष्य शरीर ही नहीं आत्मा भी है। बल्कि वास्तव में वह आत्मा ही है, शरीर तो आत्मा का सहायक मात्र है, आत्मा और शरीर में कोई विरोध नहीं पाया जाता। किन्तु प्रधानता आत्मा ही को प्राप्त है। आत्मा की उपेक्षा और केवल भौतिकता ही को सब कुछ समझ लेना न केवल यह कि अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध आचरण है बल्कि यह एक ऐसा नैतिक अपराध है जिसे अक्षम्य ही कहा जाएगा।

आत्मा का स्वरूप क्या है और उसका गुण-धर्म क्या है। यह जानना हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक है। आत्मा के अत्यन्त विमल, सुकुमार और सूक्ष्म होने के कारण साधारणतया उसका अनुभव और उसकी प्रतीति नहीं हो पाती और वह केवल विश्वास और एक धारणा का विषय बनकर रह जाती है।

विचारकों और साधकों ने उसकी प्रतीति के कुछ उपायों का उल्लेख किया है। भारत के ऋषियों और विचारकों ने इस सम्बन्ध में बहुत-सा कार्य किया है। उन्होंने आत्मा की प्रतीति के जो उपाय बताए हैं उनमें से कुछ का उल्लेख हमने अपनी इस पुस्तक में किया है। आत्म-अनुभव के बिना आदमी अधूरा रहता है। आत्म-अनुभव के पश्चात् ऐसा लगता है जैसे हमारा एक नया जन्म हुआ है। आत्म-अनुभव के अभाव में हमारा व्यक्तित्व पूर्ण नहीं

होता। अतः हम जीवन के वास्तविक आनन्द से भी वंचित रह जाते हैं।

आत्मिक व्यक्तित्व की अपनी कुछ अपेक्षाएँ होती हैं, जिनका हमें पूर्ण और विस्तृत ज्ञान होना चाहिए। जो कर्म और आचार आत्मा को अपेक्षित हैं और स्वभावतः वे आत्मा के अनुकूल हैं किन्तु यदि इसका ज्ञान हमें न हो तो ऐसे आचार और कर्म केवल कर्तव्य बनकर रह जाते हैं। वे जीवन-पुष्प को सुगंधित या सुन्दर नहीं बना पाते और न हमारे कर्म आत्मा की अभिव्यक्ति बन पाते हैं। इसी लिए हमारे कर्म साधारणतया रसात्मक और शान्तिदायक नहीं होते।

आत्मा का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्ध होता है, अतः आत्म-ज्ञान मात्र आत्म-ज्ञान न होकर मानव का पूरा जीवन होता है। प्रकाश वही है जो पूरे वातावरण को प्रकाशमय कर दे। इस सिलसिले में इस्लाम का मार्गदर्शन विस्तृत और अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

यह पुस्तक जीवन के मौलिक विषय से सम्बन्ध रखती है। अतः हमारे पाठक इसका इसी दृष्टि से अध्ययन करेंगे। ईश्वर हमारा सहायक हो।

—लेखक

विषय प्रवेश

जीवन को पूर्णरूप से समझना और उसके अनुसार आचरण करना ही अध्यात्म है। जीवन को केवल भौतिकता की दृष्टि से देखना उसे संकुचित करना है। इससे जीवन का स्तर अत्यन्त निम्न होकर रह जाता है और फिर मनुष्य और सामान्य पशुओं के मध्य कोई तात्विक अन्तर शेष नहीं रहता। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य की कुछ भौतिक आवश्यकताएँ भी हैं किन्तु मनुष्य मात्र खाने-पीने और धरती में एक सीमाबद्ध काल के लिए ज़िन्दा रहने के लिए पैदा नहीं हुआ है। मानव-जीवन का वास्तविक उद्देश्य तो पूर्णता प्राप्त करना है। उसका उद्देश्य तो जीवन की सम्भावनाओं से परिचित होना है, जिसके परिणामस्वरूप जीवन सुन्दर, सुखद और भयरहित हो जाता है और अमरत्व उसका भाग्य सिद्ध होता है।

मनुष्य केवल शरीर नहीं है कि कोई शारीरिक सुख-सुविधा ही को अपने लिए सब कुछ समझ ले। मनुष्य को मात्र शरीर जानना अज्ञानता है। मनुष्य शरीर नहीं वास्तव में आत्मा है। यही उसकी विशिष्टता है। यही उसे शरीर ही नहीं अखिल जगत् का शासक बनाता है। फिर वह देखता है कि सम्पूर्ण जगत् उसकी सेवा में रत है। दिन का उजाला उसके लिए है। रात का शान्त वातावरण उसके लिए निर्मित हुआ है। फूल उसके लिए खिलते और महकते हैं। तारों भरा आकाश उसके लिए है। उषा उसके लिए अपना दामन फैलाती है। सुरभित वायु उसके लिए चलती है। घटाएँ उसके लिए आकाश में छाती हैं। वर्षा उसके लिए होती है। वसन्त उसके लिए वसन्त है। पक्षियों के मधुर गान उसी के लिए हैं। पर्वतमालाएँ उसी के लिए हैं और पहाड़ों की बर्फ़ीली चोटियाँ उसे ही आइना दिखाती हैं। अंबर उसे उसकी ही उच्चता का एहसास दिलाता है। शाम के समय आकाश में उभरनेवाली लालिमा उसकी संवेदनशीलता को जगाती है। फिर जीवन और जगत् की हर चीज़ उसे जगत्-सखा ईश्वर की ओर उन्मुख करती है ताकि वह उसके स्रोत से

अनभिज्ञ न रहे बल्कि वह उसके साथ एकात्मता के भाव के साथ अपने जीवन को सरस, और मार्मिक बनाए और ओछेपन से मुक्ति प्राप्त करे।

भौतिकता से जीवन की व्याख्या सम्भव नहीं। मात्र पदार्थ में यह क्षमता और गुण नहीं कि वह हमारे अन्दर चेतना का संचार कर सके और नैतिक चेतना से हमें अवगत करा सके। यह कार्यकुशलता पदार्थ की नहीं हो सकती।

भौतिक शरीर में परिवर्तन निरन्तर होता रहता है। बचपन से लेकर जवानी तक फिर जवानी से बुढ़ापे तक भौतिक शरीर में जो परिवर्तन होते हैं उनसे कौन अनभिज्ञ है। किन्तु इन परिवर्तनों के होते हुए हमारी अस्मिता बनी रहती है। हम वही रहते हैं जो बचपन में थे, जो युवावस्था में रहे हैं। इसमें किसी प्रकार का अन्तर दिखाई नहीं देता। यदि अन्तिम रूप में हम पदार्थ ही होते तो शारीरिक परिवर्तनों के कारण यह अस्मिता सुरक्षित नहीं रह सकती थी। हम कुछ से कुछ हो जाते। हममें किसी स्थायित्व की सम्भावना न होती। यदि हम तात्विक रूप से पदार्थ होते तो हम वही नहीं होते जो 10 वर्ष पहले थे। पदार्थ का परिवर्तन हमें भी बदलकर रख देता। किन्तु हममें कोई चीज़ है जो बदलती नहीं, वह आत्मा (Soul) है और वही वास्तव में हम हैं। जिन्होंने अपने को मात्र मिट्टी समझा उन्होंने अपने मूल्य को घटाया। उनकी इस अवैज्ञानिक सोच से उनकी प्रतिष्ठा घट गई और जीवन से सम्बन्धित प्रश्नों का वे उत्तर भी नहीं दे सकते। जड़ पदार्थ अपनी जड़ता को कैसे त्याग सकता है। कार का महत्व है लेकिन कार का सड़क पर दौड़ना वास्तव में उसके चालक अर्थात् ड्राइवर पर निर्भर करता है। आत्मा के बिना जड़ पदार्थ कोई भी चमत्कार दिखाने में असमर्थ है।

आत्मा अखण्ड और अविभाज्य है। उसे विभाजित नहीं कर सकते। जड़ पदार्थ हो या शरीर वह कोई रूप धारण नहीं कर सकता जब तक कि वह अपने पहले रूप को त्याग न दे। त्रिकोण चतुर्भुज का रूप नहीं ले सकता जब तक कि वह अपने त्रिकोण की आकृति को छोड़ नहीं देता, किन्तु जीव या आत्मा के साथ ऐसा नहीं होता।

शरीर परस्पर विरोधी चीज़ों को एक साथ अंगीकार नहीं कर सकता। वह एक साथ काला और श्वेत नहीं हो सकता। यह भी सम्भव नहीं कि वह एक साथ गर्म भी हो और शीतल भी। इसके विपरीत जीव एक साथ विभिन्न भावों का धारक हो सकता है। कान सिर्फ़ सुनता है देखता नहीं। आँखें केवल देखती हैं, सुनती नहीं। किन्तु आत्मा समस्त अनुभवों को एक साथ समझ लेती है। उसे मालूम हो जाता है कि सुनी हुई आवाज़ किसकी है और किसकी नहीं। उसे सत्य और असत्य का विवेक भी प्राप्त होता है। यह कार्य ज्ञानेन्द्रियों से सम्भव नहीं। आत्मा का शरीर से सम्बन्ध प्राण-वायु (हवाई रूह) के माध्यम से स्थापित होता है। प्राण-वायु से आत्मा के सम्बन्ध-विच्छेद को मृत्यु कहते हैं। इस सम्बन्ध-विच्छेद के पश्चात् भी आत्मा रहती है और पूर्ण रूप में रहती है। आत्मा के गुण वास्तव में परमात्मा के गुणों की प्रतिच्छाया या प्रतिबिम्ब हैं। यह पार्थिव जगत् की चीज़ नहीं। आत्मा के ज्ञान से हमें परमात्मा का ज्ञान प्राप्त होता है।

आत्मा के गुणों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि आत्मा की वृत्ति रश्मित होती है। सूक्ष्मता एवं पवित्रता उसका विशिष्ट गुण है। वह मधु या शहद की मिठास को उसके स्पर्श से नहीं बल्कि अपनी सूक्ष्मतम विवेक से महसूस कर लेती है।

पवित्रता, विवेकशीलता, समझ, जागृति और अखण्डता आदि आत्मा के विशिष्ट गुण हैं। आत्मा देश-काल से परे (Beyond of time and space) है। आत्मा का अस्तित्व स्थान पर आश्रित नहीं। दिशाओं और सीमाओं से उसका कोई सम्बन्ध नहीं, क्योंकि ये सब चीज़ें तो विखण्डित करनेवाली हैं और आत्मा में किसी प्रकार का विभाजन सम्भव नहीं। स्थान, दिशा, आदि तो पिण्ड और शरीर और शरीर से सम्बन्ध रखनेवाली वस्तुओं के गुण होते हैं।

आत्मा के अपने विशिष्ट गुणों के कारण ईश्वर ने उसे अपने से सम्बद्ध किया है और उसे अपनी रूह फूँकने (breath of my spirit into him) से अभिव्यंजित किया है। (देखें क़ुरआन, सूरा-15 हिज्र, आयत-29)

आत्मा एकरस है जिसमें कोई द्वैत नहीं। आत्मा स्वयं प्रकाश है। ज्ञान ही उसका स्वरूप है।

जिस प्रकार प्रज्वलित बल्ब को देखकर विद्युत के होने का विश्वास कर लेते हैं, उसी प्रकार आत्मा के गुणों के माध्यम से आत्मा की अनुभूति कर सकते हैं। सुख-दुख, स्मृति, संकल्प, ज्ञान आदि गुण-धर्मों का हमें प्रत्यक्ष अनुभव होता है। यह अनुभव वास्तव में आत्मा का अनुभव है, किन्तु हम चूक जाते हैं और संकल्पकर्ता और सुख-दुख का अनुभव करनेवाली आत्मा का हमें ध्यान नहीं होता।

फिर शरीर का इच्छानुसार परिचालन होता है और परिचालक के बिना परिचालन की कल्पना कैसे की जा सकती है। यहाँ आत्मा हमारे समक्ष होती है, किन्तु हम विचार नहीं करते।

चक्षु, कर्ण आदि इन्द्रिय ज्ञान के लिए हम देखते हैं कि विभिन्न साधन हैं। इनके द्वारा ज्ञान प्राप्त करनेवाले की आवश्यकता है और वह ज्ञान-लाभ करनेवाला कोई और नहीं आत्मा ही है।

दीपक का प्रकाश अपने वातावरण को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार आत्मा भी हमारे शरीर को चेतनता के प्रकाश से प्रकाशित करती है। आत्मा की कोई मूर्ति तो नहीं बनाई जा सकती किन्तु जिस तरह प्रकाश स्थानानुसार रूप और आकार ग्रहण कर लेता है उसी तरह आत्मा का विस्तार भी शरीर के अनुसार होता है और इसी आधार पर आत्मा या जीव को अस्तिकाय कहा जाता है।

इसका सम्बन्ध तो पशुवृत्तियों से है कि आदमी स्वार्थपरता के अन्तर्गत जीवन व्यतीत करे। संकीर्ण दायरे से निकलने के लिए आवश्यक है कि हम पशुओं और मानवों के अन्तर को समझें। मनुष्य का जीवन बहुआयामी है। अर्थ एक आयाम है, पूरा जीवन नहीं। यदि मनुष्य की चेतना अर्थ-केन्द्रित होकर रह जाए तो व्यक्ति और समाज कोई उन्नति नहीं कर सकता। स्वार्थपरता किसी जड़ता से कम नहीं। मनुष्य में नैतिक चेतना भी रखी गई है। जिसका अनादर घोर अपराध है। समाज के लोगों में यदि परस्पर प्रेम, सहानुभूति, करुणा और सहयोग की भावना न पाई जाए तो उसे सभ्य समाज नहीं कह सकते। सभ्यता का आधार भौतिकता और यान्त्रिकता को

नहीं बनाया जा सकता। ऐसा दृष्टिकोण जो लोगों को परस्पर जोड़ने की अपेक्षा उन्हें एक-दूसरे से विलग कर दे कदापि किसी उच्च सभ्यता का परिचायक नहीं हो सकता। हम मात्र शरीर बनकर रह जाएँ और यह भूल जाएँ कि शरीर से हटकर भी हमारा अस्तित्व है, जिसके कारण हमें श्रेष्ठता प्राप्त है। इससे बढ़कर अज्ञता और बुद्धिभ्रष्टता और क्या हो सकती है? शरीर तो नाशवान है किन्तु हम नाशवान कदापि नहीं। जो चीज़ हमें अमरत्व का स्मरण कराती है वह शरीर नहीं आत्मा है। जो शरीर पर आश्रित नहीं, उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है और वह देश-काल से परे है। जो पूर्ण और सुन्दर है। उसी के कारण जड़-जगत् में भी सुन्दरता आलोकित होती है और वह हमारे लिए विजातीय प्रतीत नहीं होता। जीवन में आत्मा की अभिव्यक्ति जड़ पदार्थ से कहीं अधिक होती है, लेकिन हमें इसका ध्यान नहीं। यान्त्रिकता और भौतिकवादिता ने हमारी मनोवृत्ति को विकृत करके रख दिया है। इसका परिणाम यह हुआ कि 'जीवन वास्तविक सुख और आनन्द से परिपूर्ण है' इस बात से हम अपरिचित होकर रह गए। आत्म-अनुभव में जो अपार आनन्द और सुख है वह भौतिक वस्तुओं में कदापि पाया नहीं जा सकता।

आध्यात्मिक शिक्षा से हमें अपनी अनुभूति होती है, जो जीवन में एक अद्भुत घटना है। यह घटना जब किसी के जीवन में घटित होती है तो उस व्यक्ति के जीवन में मौलिक परिवर्तन आ जाता है। उसके दृष्टिकोण में व्यापकता आ जाती है। वह प्रत्येक संकीर्णता से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। उसकी महानता का साधारण व्यक्ति अनुमान भी नहीं कर सकता। जगत् की विशालता और निर्मल आकाश की पवित्रता उसके आगे नतमस्तक दिखाई देती है। संसार उससे कल्याण की आशाएँ करने लगता है। उसमें इतनी करुणा होती है कि वह जगत् के मुक्तिदाता और मार्गदर्शक के पद पर आसीन दिखाई देता है। वह अपनी खुली आँखों से यह देखता होता है कि मनुष्य का क्या स्वरूप है यथातथ्य यह है कि मानवों के अधिकांश को न अपने वास्तविक स्वरूप का पता है और न उसे यह ज्ञात है कि वह कहाँ खड़ा है और उसे कहाँ खड़ा होना चाहिए था। लोग बहुमूल्य रत्न थे किन्तु

कीचड़ में पड़े हुए हैं। उन्हें कीचड़ से निकालने की चिन्ता होनी चाहिए और यह स्वाभाविक बात है।

आत्म-अनुभव

जब तक मनुष्य की मनोवृति में परिवर्तन न आए, आत्म-अनुभव सम्भव नहीं। साधारणतया लोग पाशविक मनोवृत्ति के साथ जीते हैं। खाना-पीना, सोना-जागना यही उनका जीवन होता है। स्वार्थपरता, लोलुपता, ईर्ष्या, अहंकार, अभिमान, क्रोध, कामुकता और वैमनस्य आदि उसका धर्म होता है। दृष्टिसंकोच और हृदय-संकीर्णता के कारण उसमें वह क्षमता ही शेष नहीं रहती कि वह जीने की उच्चतम भावनाओं और कामनाओं से जुड़ सके। यही कारण है कि आत्म-अनुभव के लिए यह ज़रूरी समझा गया कि आदमी निम्न एवं तुच्छ मनोवृत्तियों से मुक्त हो। अन्यथा घृणित और तुच्छ भावनाएँ और मनोवृत्तियाँ उसका दामन थामे रहेंगी और वह आगे की दिशा में बढ़ने में असमर्थ रहेगा।

आत्म-अनुभव एवं हृदय की उत्कीर्णता के लिए भारतीय मनीषियों ने साधना एवं योग का मार्ग अपनाया था। पतांजलि का योग दर्शन इस संदर्भ में अधिक प्रसिद्ध है।

पतंजलि ने अपने योगदर्शन में आठ अंगों का उल्लेख किया है जिन्हें अष्टांग योग कहा जाता है, वे ये हैं— यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

यम — यम का अर्थ उपरम या अभाव है। इसके भी पाँच प्रकार हैं, जो वस्तुतः पाँच प्रकार के संयम हैं। (i) अहिंसा अर्थात् किसी को दुख न पहुँचाना, (ii) सत्य आर्थात् सत्य का पालन करना (iii) अस्तेय अर्थात् किसी अन्य की वस्तु का अपहरण या चोरी न करना (iv) ब्रह्मचर्य यानी कामोद्पक और वासनात्मक चीज़ों को त्यागकर वीर्य की रक्षा करना अर्थात् यौन-संयम का पालन करना और (v) अपरिग्रह अर्थात् विषम भोगार्य पदार्थों का संग्रह न करना।

नियम – शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, और ईश्वर-प्रणिधान ये पाँच नियम हैं। (शौच संतोषतपः स्वाध्ययेश्वर प्रणिधानानि नियमः यो॰ सू॰-45) शरीर, वस्त्र, मकान और मन को शुद्ध रखना शौच है। भोजन भी शुद्ध हो और लोगों के साथ व्यवहार भी पवित्र हो। संतोष यह है कि जो कुछ प्राप्त हो उसपर सन्तुष्ट हो। अनुचित कामनाओं और तृष्णा को मन में जगह न दे। धर्म का पालन करना और धर्म-पालन में जो कष्ट हो उसे सहर्ष सहन करना तप है। अपने कर्तव्य के बोध के लिए महापुरुषों के लेख का अध्ययन करना स्वाध्याय है। इसके अतिरिक्त यह भी स्वाध्याय के अन्तर्गत आता है कि आदमी विवेक द्वारा देखे कि उसमें क्या दोष पाए जाते हैं, यदि पाए जाते हों तो उन्हें दूर करने का प्रयास करना।

ईश्वर-प्रणिधान का अर्थ है कि आदमी ईश्वर के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित हो। अपने-आपको उसकी शरण में दे दे।

प्रशिक्षण और आत्मिक विकास के लिए भारत में कई प्रकार के योग का प्रतिपादन हुआ है। इनमें कर्म-योग, ज्ञान-योग, ध्यान-योग, भक्ति-योग और हठ-योग प्रसिद्ध हैं। भक्ति-योग को अधिक महत्व दिया जाता है। लेकिन इन सबका उद्देश्य मुख्यतः एक ही है कि सत्य का साक्षात्कार हो और मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को जान ले, जो अत्यन्त सुन्दर और सुखकर है। फिर आत्मा के तल पर जीना सहज हो जाता है और जब हम आत्मा के तल पर जीने लगते हैं तो ईश्वर हमारी आवश्यकता हो जाता है। जब हम अपने शरीर के आस-पास ही जीते हैं, तो इस दशा में हम ईश्वर से विमुख हो सकते हैं। किन्तु विकसित आत्मा की ईश्वर एक ऐसी आवश्यकता बन जाता है कि जिसके बिना वह अपने को अधूरा पाती है।

हम यहाँ कुछ योग-साधनाओं का संक्षेप में उल्लेख करना चाहेंगे।

भक्ति-योग

परमात्मा के प्रति परम आसक्ति अथवा प्रेम का अतिरेक इसका मुख्य रूप है। इसे रागात्मक या पराभक्ति भी कहते हैं। शुद्ध और सात्विक भावना को भक्ति-योग में भाव कहा जाता है। भाव की दशा में जो आनन्द प्राप्त

होता है उसे रस कहते हैं। परिशुद्ध भाव रसयुक्त होता है। इसके रसास्वादन को रति से अभिव्यंजित करते हैं। यह भाव दिव्य प्रेम में परिवर्तित होता है। इसमें व्यक्ति वह सब कुछ पा लेता है स्वभावतः जिसकी उसमें अभिलाषा पाई जाती है। हृदय को परम-शान्ति प्राप्त होती है। ईश्वर के प्रति उसे उत्कृष्ट स्नेह होता है। प्रेम के माधुर्य भाव से वह परिचित होता है। संसार में प्रेमी और प्रेयसी के मध्य जो माधुर्य भाव पाया जाता है उसे उसकी हल्की सी एक झलक कह सकते हैं।

परमात्मा भक्तजन के लिए सब कुछ है, वह प्रभु भी है, सखा और मित्र या प्रेमपात्र भी। आत्मा की पवित्रता के कारण मनुष्य में समस्त अच्छे गुण पैदा हो जाते हैं। वह सहज हो जाता है। उसमें करुणा उत्पन्न हो जाती है। गहरी समझ के कारण वह अभिमान रहित होता है। सबका हितैषी। सद्गुणों के कारण दुर्गुणों से उसका कोई नाता नहीं रहता। घृणा, हिंसा, क्रूरता, असन्तोष, अभिमान और असहनशीलता आदि दुर्गुण विनष्ट हो जाते हैं।

कर्म-योग

जीवन में कर्म को त्याग देना सम्भव नहीं। कर्म को योग बना लेना समझ और बुद्धिमानी की बात है। कर्म-योग में व्यक्ति कर्मों के पीछे विद्यमान चेतना का साक्षात्कार करने का प्रयास करता है। फिर हमारा कर्म हमारी चेतना की तरंग बन जाता है।

ईश्वरार्पण के भाव से अथवा ईश्वर की प्रसन्नता के लिए किए गए कर्म मनुष्य के लिए बन्धन न बनकर बन्धन से मुक्ति का कारण बनते हैं। उचित रूप से किया गया कर्म भक्ति के विकास में सहायक होता है।

हमारे कर्म यदि धर्मानुकूल नहीं हैं बल्कि उनके पीछे ग़लत धारणाएँ और तुच्छ उद्देश्य काम कर रहे हों, तो फिर ऐसे कर्म हमें सत्य, ईश्वर और आत्मा से जोड़ने के बदले हमें स्वयं से, ईश्वर से, और सत्य से दूर कर देंगे और हमारे कर्म हमारे लिए अभिशप्त और बन्धन सिद्ध होंगे।

ज्ञान-योग

जीवन में आत्म-साक्षात्कार ज़रूरी है। ब्रह्म या परमात्मा ही सत्य है।

कारण-स्तर पर ईश्वर और सूक्ष्म-स्तर पर उसे हिरण्य-गर्भ से अभिव्यंजित किया जाता है। स्थल रूप में विराट उसका चमत्कार है। जीवात्मा के रूप में वह इसका आभास कराता है कि ब्रह्म मात्र एक शक्ति नहीं है बल्कि वह चेतना से भी आभूषित है और उसकी एक वैयक्तिक हैसियत है। जिससे प्रेम करना हमारा कर्तव्य होता है। जिसकी अप्रसन्नता से हमें डरना चाहिए और ऐसे कर्म नहीं करने चाहिएँ जो उसे पसन्द न हों। हमें वही कर्म करने चाहिएँ जो उसे प्रिय हैं। जीवात्मा वास्तव में ब्रह्म की प्रतिच्छाया और उसकी कृति है।

ज्ञान-योग के मार्ग में विवेक, वैराग्य, मनन, और निर्विकल्प समाधि आदि योग्यताएँ और साधन ज़रूरी हैं। गहन ध्यान वास्तव में निर्विकल्प समाधि में परिणत हो जाता है। अविधा के आवरण विनष्ट हो जाते हैं और निर्विकल्प समाधि घटित होती है। सर्वोच्च सत्य परमात्मा है। साधक परम-चेतन के रूप में परमात्मा का ध्यान करता है। वह जानता है कि ब्रह्म ही आँखों की आँख और कानों का कान है और वही मन और आत्मा की आत्मा है।

साधक ख़ूब समझता है कि वस्तुओं में उच्चता इन्द्रियों को प्राप्त है। बुद्धि मन से श्रेष्ठ है। सार्वभौमिक मन अर्थात् ब्रह्म बुद्धि से उच्च है।

ज्ञान ज्योति के विकसित होने पर साधक विशेष गुणों से विभूषित होता है। शुभ विचार, मन की पवित्रता और तुरीय सोपानों पर चढ़ता दिखाई देता है। तुरीय से अभिप्रेत भावातीत चेतना है, इस अवस्था में आत्मा ब्रह्म में लीन हो जाती है और योगी में सत्त्व-पात होता है। साधक का मन शुभ संस्कारों से पूर्ण होता है। जीवन के अनेक कार्यों में संलग्न होने पर भी वह सभी प्रकार के सुख-दुख से परे होता है और उसे अनन्त संतोष प्राप्त होता है।

राज-योग

अवचेतन और अचेतन मन को चित्त कहा जाता है। चित्त महत् एवं व्यापक है, किन्तु किसी व्यक्ति विशेष के साथ सीमित हो जाता है। इसमें सम्भावित तीन गुणों का आविर्भाव होता है जिनको सत्व, रजस और तमस

कहते हैं। क्रोध, शिथिलता, वासना आदि का सम्बन्ध तमस और रजस से है। सत्व का सम्बन्ध विवेक, ज्ञान और पवित्रता से है। सत्व गुण में ही आदमी को उसके वास्तविक स्वरूप और लक्ष्य से अवगत होने की क्षमता पाई जाती है। राज-योग वास्तव में योग का क्रियात्मक रूप है। इसमें मन की शक्ति को जगाना होता है। रजस और तमस दुख का कारण बनते हैं, जबकि सत्व के द्वारा उत्कृष्टता और समुन्नति की प्राप्ति होती है।

चित्त में सत्यज्ञान (प्रमाण), मिथ्या ज्ञान (विपर्य), स्मृति और विकल्प (शब्दज्ञान से उत्पन्न होनेवाला सत्य वस्तुशून्य ज्ञान) आदि वृत्तियाँ उठती रहती हैं। इन चित्त-वृत्तियों का निरोध ही वास्तव में योग है। मन में यदि प्रबलता रजस या तमस को प्राप्त है तो उस समय उठनेवाली वृत्तियाँ दुखद होती हैं जिन्हें योग की भाषा में क्लिष्ट कहा जाता है और यदि प्रधानता सत्व को प्राप्त है तो जो वृत्तियाँ उठती हैं वे दुखरहित अर्थात् अक्लिष्ट होती हैं और वे दुख और शोक को दूर करनेवाली होती हैं। अविद्या, अस्मिता (अहमता आदि) राग, द्वेष, मृत्यु-भय आदि की गणना क्लिष्ट (दुखद) में होती है। द्वेष, घृणा, तृष्णा, लोभ, अभिमान, स्वार्थपरता आदि ऐसी क्लिष्ट वृत्तियाँ हैं जो मन की व्यापकता को परिसीमित कर देती हैं और मनुष्य शरीर और भौतिक वस्तुओं तक ही सीमित होकर रह जाता है।

इसके विपरीत सात्विक वृत्तियाँ जो अक्लिष्ट कहलाती हैं जब प्रबलता में होती हैं तो मानव ईश-प्रेम, करुणा, विनम्रता, सत्यनिष्ठा, श्रद्धा, अहिंसा और निःस्वार्थ भावना से परिपूर्ण और अपने व्यापक स्वरूप में स्थिर रहता है। इसमें सन्देह नहीं कि करुणा, प्रेम, आत्मविश्वास, सहनशीलता आदि सद्गुण शाश्वत आनन्द का कारण सिद्ध होते हैं।

साधक अपनी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी (प्रत्याहार) करके प्रत्येक दशा में शान्ति और आत्मिक निर्भरता का अनुभव कर सकता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार बहिरंग साधनाएँ हैं और धारणा, ध्यान और समाधि अन्तरंग साधनाएँ कहलाती हैं।

बाहरी या आन्तरिक किसी विषय या वस्तु से चित्त (मन) को बाँध देना या लगा देना धारणा है। एकाग्रचित अवस्था निरन्तर बनी रहे, अन्तर्दृष्टि

विकसित हो, यह अवस्था ध्यान की है और जब ध्यान गहरा हो जाता है और आन्तरिक जीवन की भावातीत चेतना प्रकट हो जाती है तो यही अवस्था समाधि की है।

धारणा, ध्यान और समाधि को संयम कहते हैं। संयम से बुद्धि और आत्मिक प्रकाश प्राप्त होता है। ईश्वर या परमात्मा ही अपना परम लक्ष्य है। ईश्वर पर संयम करने से सर्वोच्च समाधि प्राप्त होती है। मन को अपने ध्येय पर स्थित करने के प्रयास को अभ्यास कहते हैं।

हठ-योग

अन्य योग-साधना की अपेक्षा हठ-योग को कठिन माना जाता है, लेकिन यह साधना प्रशस्त और वैज्ञानिक है। हठ-योग में साधना के लिए तीन नाड़ियों इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना का उपयोग किया जाता है। रीढ़ में मेरुदण्ड के बाईं ओर इड़ा और दाईं ओर पिंगला नाम की नाड़ियाँ पाई जाती हैं। इन दोनों के मध्य सुषुम्ना नाड़ी पाई जाती है। स्वरोदय शास्त्र के अनुसार जो साँस बायें नथने से आती-जाती है वह इड़ा नाड़ी से होकर आती है और जो साँस दाएँ नथने से आती-जाती है वह पिंगला नाड़ी से होकर आती है। साँस यदि कुछ क्षण बाएँ और कुछ क्षण दाँए नथने से निकले तो वह सुषुम्ना नाड़ी से आ रही है। मध्यस्थ नाड़ी सुषुम्ना को ब्रह्म स्वरूपा कहते हैं। जगत् उसी में अवस्थित है। साधक पहले इड़ा (या इला) फिर पिंगला और इसके पश्चात् सुषुम्ना नाड़ी को साधते हैं। सुषुम्ना के सबसे नीचे के भाग में मूलाधार चक्र है। इस चक्र में महाशक्ति कुण्डलिनी को अवस्थित मानते हैं। प्राणायाम आदि क्रियाओं के द्वारा साधक या योगी इसी शक्ति को जगाने का प्रयास करते हैं। जब कुण्डलिनी शक्ति जाग जाती है तो वह सुषुम्ना के भीतर-भीतर सिर की ओर चढ़ने लगती है और सात चक्रों को पार करते हुए ब्रह्मरन्ध्र या मूर्द्धज्योति (या सहस्रार) तक पहुँचती है। ज्यों-ज्यों यह शक्ति नीचे से ऊपर को चढ़ती है साधक में अद्भुत परिवर्तन आने लगता है। ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचने पर साधक सबसे परे हो जाता है और वह पूर्ण समाधि या तुरीयावस्था को प्राप्त होकर ब्रह्म के स्वरूप में लीन हो जाता है।

कुण्डलिनी प्रसुप्त अवस्था में होती है। जागृत होने पर वह सप्त चक्र को भेदने के पश्चात् सिर के सर्वोच्च स्थान पर सहस्रार से मिल जाती है।

नाड़ियों के विषय में यह जान लेना ज़रूरी है कि ये सूक्ष्म नलिकाएँ हैं जिनमें प्राणों का प्रवाह चला करता है। इन्हें खुली आँखों से नहीं देखा जा सकता। नड़ियों में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना प्रमुख हैं। कुण्डलिनी जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि सुषुम्ना से ही होकर ऊपर चढ़ती है। आसन, प्राणायाम और मुद्रा आदि के अभ्यास के द्वारा नाड़ियों को शुद्ध करना ज़रूरी होता है।

सुषुम्ना नाड़ी में सात चक्र माने गए हैं। वे इस प्रकार हैं, 1. मूलाधार (गुदा-द्वार के पास) 2. स्वाधिष्ठान (जनन अंग के मूल में) 3. मणिपुर (नाभी में) 4. अनाहत (हृदय में) 5. विशुद्ध चक्र (गर्दन में) 6. आज्ञा चक्र (दोनों भौंहों के मध्य) 7. सहस्रार (सिर के सबसे ऊपरी भाग में)।

अनेक नाड़ियाँ विभिन्न दिशाओं से आकर मिलती हैं। इन्हीं से चक्र बनता है।

हठ-योगी आसन, प्राणायाम और मुद्रा के अभ्यास से कुण्डलिनी को जाग्रत करते हैं। राज-योग में इसे धारणा ध्यान के माध्यम से जाग्रत किया जाता है। ज्ञानी इसके लिए विश्लेषणात्मक संकल्प से काम लेते हैं। भक्ति -योग में समर्पण और भक्ति भाव से काम लिया जाता है।

सम्पूर्ण योग का आशय है कि मनुष्य अपने सभी स्तरों पर ब्रह्म, ईश्वर या परमात्मा से संयुक्त हो जाए और यह केवल कल्पना और ख़याल न हो बल्कि यह उसकी अनुभूति बन जाए। ज्ञान, भावना, संकल्प और कर्म या क्रिया मानव व्यक्तित्व के ये चार मौलिक पक्ष हैं। इन सभी पक्षों से व्यक्तित्व का विकास अभीष्ट है। केवल एक पक्ष से नहीं।

ज्ञान-योग का अर्थ यह है कि बुद्धि का रूपान्तर अन्तःप्रज्ञा में हो और बौद्धिक स्तर पर व्यक्ति ईश्वर के साथ जुड़ जाए। भक्ति-योग का मतलब यह होता है कि भाव और भावना भक्ति में रूपान्तरित हो जाए और व्यक्ति पूर्णतः ईश्वर के प्रति समर्पित होकर रह जाए। मनुष्य मन की शक्तियों पर

क़ाबू पाकर उनको ईश्वरीय इच्छा के साथ संयुक्त कर दे यही राज-योग या ध्यान-योग है। कर्म-योग में व्यक्ति अपनी क्रियाशीलता और कर्मों को ईश्वरीय इच्छा के साथ संयुक्त करता है। योग के विभिन्न प्रकार एक-दूसरे के पूरक हैं। इनसे व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों की एकात्मता विभिन्न प्रकार से अभिव्यक्त होती है।

एक और तरह से समझें, ज्ञान-योग का लक्ष्य है सत्य को पाना। कर्म-योग का लक्ष्य मुक्ति है। अनुभूति और भावों का मार्ग है भक्ति-योग, इसका लक्ष्य प्रेम है। ज्ञान-मार्ग में चेतना बदल जाती है। कर्म-मार्ग में विषय-वस्तु में परिवर्तन आता है। भक्ति-मार्ग संयोग का मार्ग है इसमें परिवर्तन पारस्परिक होता है। चेतना और विषय-वस्तु में संयोग होता है। 'वह' और 'तू' के मध्य संयोग से परम आनन्द घटित होता है।

मानव-जीवन जिस मार्ग की अपेक्षा करता है वह व्यावहारिक, सहज और सरल मार्ग की है। जिसमें जटिलता और पेचीदगी न हो। जिससे जीवन की सहजता और सरलता को कोई आघात न पहुँचे। जो सामान्य जन के लिए भी उपयोगी हो। जो हमसे हमारे जीवन को छीन न ले। यह जीवन, यह चेतना और बुद्धि और विवेक ईश्वर ने प्रदान किया है। ये निरर्थक नहीं हो सकते। इनका निषेध नहीं किया जा सकता। जीवन और सामाजिक ज़रूरतों की अवहेलना नहीं की जा सकती। इनकी उपेक्षा से जीवन विकृत होकर रह जाता है। आदमी की अपनी सहजता नष्ट हो जाती है। इस रहस्य को बहुत कम लोग जानते हैं कि साधारण बनना और साधारण बने रहना ही धार्मिक होना है।

मानव में जो प्राकृतिक वृत्तियाँ पाई जाती हैं, भूख-प्यास और काम-भावना (Sexual instinct) आदि। इन्हें नष्ट नहीं किया जा सकता। ये निरर्थक नहीं हैं। इनका निषेध नहीं नियंत्रण ज़रूरी है, क्योंकि नियंत्रण के बिना इनसे अभीष्ट लाभ नहीं उठाया जा सकता। ईश्वर ने हमें जो कुछ दिया है वह उसके मार्ग में बाधक कदापि नहीं हो सकता। क्या ईश्वर स्वयं अपने मार्ग में रुकावट खड़ी करना चाहेगा। अध्यात्म ही धर्म है। धर्म हमारे अस्तित्व का स्पष्टीकरण है। हमारे जीवन के जो पहलू साधारणतया निगाहों से ओझल

रहते हैं, धर्म हमें उनसे अवगत कराता और बताता है कि उनका क्या महत्व है।

इन्द्रियातीत अनुभव से आनन्द की उपलब्धि होती है और हमें यह ज्ञात होता है कि हम वास्तव में आत्मा हैं, शरीर नहीं। हमारा शरीर से सम्बन्ध है लेकिन हम शरीर नहीं हैं। इससे आनन्द का स्तर खुल जाता है। हमें एक विशेष ढंग से रहने और जीने की शैली प्राप्त हो जाती है। यह स्थिति प्रेम की होती है। महत्व इसका है कि हमें कोई भी चीज़ हमारे वास्तविक स्वरूप से भटका न सके। विचार के महत्व से इनकार नहीं किया जा सकता, लेकिन हम अपने अन्तिम विश्लेषण में विचार से आगे की चीज़ हैं।

कभी-कभी बल्कि अधिकतर "मैं" का आधिक्य हमारे लिए परदा बन जाता है। हम जो हैं उससे वह हमें दूर कर देता है। सत्य के बिना कुछ नहीं। हम सत्य पर ही निर्भर करते हैं। वह नहीं तो हम नहीं। इसी पहलू से यह बात कही गई है कि वास्तव में सत्य ईश्वर ही है। उसका होना ही हमारा होना है। इसका यह अर्थ नहीं होता कि मनुष्य ईश्वर है। बल्कि आशय यह है कि ईश्वर के होने से ही हमें अस्तित्व मिला। होना तो वास्तव में उसका होना है। उसके होने का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। हमारे अस्तित्व का स्रोत वही है। हमारे जीवन में उसी का बाहुल्य होना चाहिए। सत्य सर्वथा आनन्द है। सत्य या ईश्वर से निकट होने की पहचान यह है कि आनन्द की हम पर वर्षा होने लगे। जैसे सुगंध के क़रीब होने से सुगंध मिलने लगती है। बर्फ़ के निकट होने से ठंडक का आभास होने लगता है। प्रकाश के निकट होने से प्रकाश का आभास होता है। इसी प्रकार ईश्वर के निकट होने से ईश्वर के गुणों की प्रतिच्छाया हममें उद्घटित होनी चाहिए। वह करुणामय है तो हममें भी करुणा प्रकट हो, वह दयालु है तो हममें दया-भाव हो, वह दानशील है तो हममें भी दानशीलता होनी चाहिए।

वस्तुतः ईश्वर के सामीप्य से आदमी की दशा ऐसी हो जाती है जो अत्यन्त निर्मल, सुन्दर और सुकुमार होती है। इस दशा का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। आदमी को उसका साक्षात्कार होता है, जो समय और स्थान की सीमाओं से परे होता है। वह जीवन और अस्तित्व के मर्म को स्पर्श

कर रहा होता है। सीमाएँ टूट जाती हैं, चाहे वे समय की सीमाएँ हों या देश और क्षेत्र की। आदमी को उसकी अनुभूति होती है जो देश-काल से परे है।

जो कुछ हमें मिला है, उसका निषेध नहीं करना है। बल्कि उससे बाहर हो जाना है। क्योंकि सब कुछ वही नहीं है जो आँखों से दिखाई देता है। जिसका अनुभव इन्द्रियों के माध्यम से होता है। यह तो बड़े घाटे की बात होगी कि उसी को हम पर्याप्त समझ लें जो भौतिक रूप से हमें प्राप्त है। यह बड़े घाटे की बात होगी कि जो इसके अतिरिक्त है और जो इससे उत्तम और असीम है उससे हम चूक जाएँ।

जो भौतिक रूप में हमारे सामने है वह असीम की छाया मात्र है और अत्यन्त सीमित है। जो सीमित है वह हमें असीम का आमंत्रण दे रहा है। इस आमंत्रण की उपेक्षा और असीम की संभावनाओं से अपने-आप को विलग रखना अपने साथ ज़ुल्म है।

योग इस सिलसिले में जो मार्ग दिखाते हैं उनके महत्व से इनकार नहीं। उनसे मानसिक लाभ पहुँचता है। अपने-आपको नियंत्रित दशा में ला सकते हैं। लेकिन योग ही तो सब कुछ नहीं है। योग-क्रिया ही तो पूरा जीवन नहीं है। वह जीवन चाहे सामाजिक हो या उसका सम्बन्ध अर्थ और राजनीति से हो। उपर्युक्त योग-मार्ग हर क्षेत्र में श्रेयष्कर सिद्ध होते प्रतीत नहीं होते। फिर योग-मार्ग जितना सहज होना चाहिए वह सहजता उनमें दिखाई नहीं देती। योग-मार्ग कुछ साधकों और योगियों की चीज़ होकर रह जाता है। जन-सामान्य से उनका सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। ज़रूरत ऐसे योग की है जो अत्यन्त सहज, सरल और हमारे स्वभाव के अनुकूल हो और फिर हमारा जीवन और अस्तित्व या शील-स्वभाव ही योग बन जाए। इसकी ओर कुछ विद्वानों और विचारकों का ध्यान गया भी है।

आधुनिक युग के प्रसिद्ध साधक और विचारक कृष्णामूर्ति ने इसपर ख़ास ज़ोर दिया है कि ध्यान को जटिल और मुश्किल नहीं होना चाहिए। उन्होंने ध्यान की अत्यन्त स्वाभाविक और सरल व्याख्या की है। गुरूजीफ़ ने भी नए और स्वाभाविक मार्ग की बात की है। कृष्णामूर्ति कहते हैं कि ध्यान संसार से पलायन नहीं है। यह वास्तव में संसार और उसके

तौर-तरीक़ों की समझ है। वे कहते हैं कि ध्यान का अर्थ है, इस संसार से बाहर चले जाना। एक परदेसी और अजनबी हो जाना। ध्यान एक ऐसी गतिविधि है जो समय के आयाम में शुरू होकर समय के पार चली जाती है।

उनका कहना है कि सबके प्रति सजगता ही में अवधान या होश का जन्म होता है। आप संसार में रहते हुए भी संसार में नहीं होते। ध्यान तो एक स्वाभाविक स्थिति है। वे कहते हैं कि ध्यान की नींव दैनिक जीवन में रखनी आवश्यक है, इस बात में कि व्यक्ति व्यवहार कैसे करता है और सोचता किस तरह है। ध्यान का अर्थ यह है कि आप जो भी कर रहे हों उसके प्रति सजगता, जो आप सोच रहे हों और आप जो महसूस कर रहे हों उसके प्रति सजग रहना और प्रत्येक विचार और भाव के प्रति सजग रहना ही ध्यान है।

वे कहते हैं कि जो है उसे देखना और उसके पार जाना ही ध्यान है।

कृष्णामूर्ति एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं प्रेम ध्यान है। यह कुछ ऐसा है जो समस्त इन्द्रियों के पार है। इस प्रेम का तत्क्षण बोध और एहसास ही ध्यान है। प्रेम सत्य है और ध्यान इस सत्य के सौन्दर्य का अन्वेषण है। उनकी दृष्टि में ध्यान हमारा होना और हमारी मौजूदगी है। जो है उसे देखना और उसके पार चले जाना ही ध्यान है। ध्यान वास्तव में असीम और अनन्त की ओर दरवाज़ा खोल देता है। समय का कोई अस्तित्व नहीं है, अतः जीने का अर्थ ही और होता है। समय से मुक्त होने के पश्चात् हम अपने से अत्यन्त निकट होंगे और सत्य के निकट भी।

एक दूसरे साधक और विचारक तेजगुरु सरश्री जो महा आसमानी शिविर का आयोजन विभिन्न स्थानों पर करते हैं, उनके विचार और अनुभव जान लेना भी आवश्यक है।

ध्यान के विषय में उनका कहना है कि जो आप नहीं हैं उसे मिटा देना और जो आप हैं उसे जगा देना ध्यान है। ध्यान वास्तव में गुण है। उनकी दृष्टि में अपने मूल स्वभाव को जानना और उसमें स्थापित होना ही ध्यान और धर्म है।

सरश्री कहते हैं कि ध्यान की 112 विधियाँ हैं। उदाहरणार्थ विचारों का

साक्षी (Thought Witnessing Meditation), आनापान ध्यान (Breathing Meditation), विपश्यन ध्यान, श्रवण ध्यान (Listening Meditation) और योग ध्यान आदि। इन सभी विधियों का मूल उद्देश्य शरीर से परे जाना है। यदि बिना विधियों के जा सकें, यदि सीधा सुनने और समझने की तैयारी है तो श्रवण मार्ग बहुत आसान है। विधि में जाने में ख़तरे हैं। सिद्धियों में उलझने का ख़तरा है और अहंकार के पैदा होने का ख़तरा भी इसमें पाया जाता है। हम यदि जागृत अवस्था में उस अनुभव को पहुँचते हैं जो समय और मन, बुद्धि और शरीर से परे है, उसे समाधि कहते हैं। इसमें दुनिया के बनानेवाले को जाना जाता है, जो हमसे दूर नहीं। ऐसी चीज़ को जाना जाता है जो दुनिया से पहले थी। समय तो बाद में आया है। जब दुनिया बनी तब समय का आर्विभाव हुआ।

सरश्री कहते हैं कि ध्यान है अन्तिम समझ। आप ही ध्यान हैं। जहाँ देखनेवाले को देखा जाता है और जाननेवाले को जाना जाता है। उनकी दृष्टि में आज्ञा चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्धि चक्र और सहस्रार चक्र आदि में ऊर्जा शक्ति जागृत होती है लेकिन वास्तविक ध्यान के लिए इन सभी की कोई ज़रूरत नहीं।

योग विधियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन विधियों के द्वारा आदमी को पता चलता है कि वह शरीर के अतिरिक्त कुछ और भी है। उसे आत्मा कहें या आत्मन या व्यक्तित्व और स्व (Self) कहें। इन विधियों से अपने स्वरूप की पहचान होती है। यह स्वरूप अत्यन्त सुकुमार, विमल और सुन्दर है। इसे ईश्वर की प्रतिच्छाया कह सकते हैं। इससे ईश्वर के पहचानने में आसानी होती है। आत्मा के स्वरूप के ज्ञान से परमात्मा के ज्ञान का द्वार खुलता है और आदमी अज्ञान के कितने ही बन्धनों से छुटकारा पा लेता है।

साधक विचारकों ने अपना यह एहसास व्यक्त किया है कि आत्मा के विशिष्ट गुण हैं। प्रेम, करुणा, नम्रता, पवित्रता, कोमलता, सहनशीलता, धैर्य, दानशीलता, उत्सर्ग, सौन्दर्य-बोध, सहयोग और सहानुभूति आदि आत्मा ही के गुण हैं।

उनकी दृष्टि में ये चीज़ें आत्मा के लिए मृत्यु हैं : द्वेष, दुर्भावना,

स्वार्थपरता, ईर्ष्या, कठोरता, क्रोध, अहंकार, कृपणता, पक्षपात, दुराग्रह, महत्वाकांक्षा, संकुचित दृष्टिकोण और भावनाओ और विचारों में सार्वभौमिकता का अभाव आदि।

वास्तविकता यह है कि जीवन एक ऐसा रहस्य है जिसे हल नहीं किया जा सकता। यही उसका सौन्दर्य है। मनुष्य को ईश्वर ने बहुत कुछ प्रदान किया है। ज़रूरत जिसकी है वह एक जागरूकता और समझ है। अष्टावक्र और कृष्णामूर्ति का मार्ग है सत्य और ब्रह्म को जानना। इसी जानने में सब कुछ प्राप्त हो जाता है। सामान्य रूप से मार्ग तीन हैं। ज्ञान-मार्ग, कर्म-मार्ग और भक्ति-मार्ग। इन तीनों का लक्ष्य क्रमशः सत्य, मुक्ति और प्रेम है। गुरुजीफ़ ने चौथे मार्ग की बात की है। चौथा मार्ग है तर्क और विश्वास के पार का मार्ग। इसमें कुछ बदलना नहीं होता। न चेतना को बदलना है और न विषय-सामग्री बदलनी है। इसमें जो कुछ है उसे स्वीकार कर लेना होता है। इसी स्वीकृति में सबके पार हो जाते हैं। रूपान्तरण स्वतः हो जाता है। आदमी साक्षी बना रहता है और घटना घटित हो जाती है। सूफ़ी मार्ग भी यही चौथा मार्ग है। सब कुछ मौजूद है। तुम केवल शान्त बने रहो और देखो। फिर घटना घटित हो जाती है। आनन्द का विस्फोट हो जाता है। साक्षी बने रहने के अतिरिक्त कुछ करना नहीं होता। सब परोक्ष की ओर से होता है, उसमें अपना कोई हस्तक्षेप नहीं होता। इसमें बस होश, जागरण और मात्र साक्षी होने की आवश्यकता होती है।

इस्लाम का अध्यात्म

साधकों और विचारकों आदि के अनुभवों, साधनाओं और एहसास के अध्ययन के बाद हम इस्लाम धर्म की शिक्षाओं का अवलोकन करना चाहेंगे। इस्लाम ईश्वर का दिखाया हुआ मार्ग है। यही समस्त नबियों, पैग़म्बरों अर्थात् ईश्वर के सन्देशवाहकों का धर्म रहा है। इसी की शिक्षा वे अपनी क़ौम और अपने अनुयायियों को देते रहे हैं। पैग़म्बरों के सिलसिले की अन्तिम कड़ी हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) हैं, जिनपर अल्लाह की अन्तिम किताब क़ुरआन का अवतरण हुआ है। अतः हमें पूर्ण विश्वास है कि अध्यात्म के सम्बन्ध में इस्लाम का दिखाया हुआ मार्ग सत्य और व्यावहारिक है। इसकी शिक्षाएँ जटिल और दुस्साध्य नहीं हैं कि जनसामान्य उसके दिखाए हुए मार्ग पर चलने का साहस ही न जुटा पाएँ

इस्लाम एक पूर्ण जीवन-प्रणाली है। इस्लाम की विशेषता यह है कि वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मार्गदर्शन करता है। विचार, भावना और कर्म प्रत्येक दृष्टि से उसकी शिक्षाएँ सत्य और पूर्ण हैं। वह हमें परेशानियों और कठिनाइयों से छुटकारा दिलाता और हमारे जीवन को सरल बनाता है। लोगों की पैदा की हुई रुकावटों को दूर करता है और उन बन्धनों को काटता है जिनमें लोग जकड़े हुए दिखाई देते हैं। वह दिलों को आराम पहुँचाता है और आत्माओं को अनन्त आनन्द की सूचना देता है। वह बताता है कि जीवन की संभावनाएँ असीम हैं। यह मनुष्य का अज्ञान है कि अपने को अत्यन्त सीमित और संकुचित दशा में ग्रस्त कर लेता है और जो शाश्वत है और जो असीम है उससे वह अपना सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाता।

इस्लाम अध्यात्म और ईमान के और मानव-स्वभाव तथा नैतिकता के मध्य एकात्मता पैदा करता है और नैतिकता का सम्बन्ध दैनिक जीवन के साथ स्थापित करता है। वह जीवन के किसी क्षेत्र को इससे अलग नहीं देखना चाहता। चाहे सामाजिक या पारिवारिक मामले हों या आर्थिक या राजनीतिक हों, यौद्धिक हों या संधि-सम्बन्धी मानव-जीवन के किसी भी क्षेत्र की वह उपेक्षा नहीं करता। वह जीवन के समस्त क्षेत्रों के मध्य सामंजस्य

और-एकात्मता पैदा करता है। यह उसका बड़ा कारनामा है।

इस्लाम का मौलिक दृष्टिकोण यह है कि आत्मा और हमारे शरीर में किसी प्रकार का विरोध नहीं पाया जाता। शरीर ईश्वर का ही उपहार है, इसे क्षीण और दुर्बल करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह सही नहीं है कि शरीर के निषेध के बिना अध्यात्म की उपलब्धि सम्भव नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि शरीर को आत्मा के अधीन रखा जाए। आत्मा की अपेक्षाओं के विरुद्ध शरीर से काम न लिया जाए।

आत्मा अपनी सूक्ष्मता के कारण आँखों से दिखाई नहीं देती। हालाँकि जीवन में सबसे अधिक वही व्यक्त है। आत्मा विभिन्न रूपों और शैलियों में अपने को व्यक्त करती है। हमारी बातचीत, पारस्परिक व्यवहारों और आचरणों में उसी की अभिव्यक्ति होती है। किन्तु, साधारणतया हम इसकी ओर ध्यान नहीं देते। आत्मा की विशुद्धता और उसके विकास में अच्छे कर्म सहायक होते हैं और बुरे कर्म आत्मा के विकास में बाधक सिद्ध होते हैं।

आत्मा शरीर से भिन्न और अमूर्त होने के बावजूद शरीर के माध्यम से मूर्तिमान होती है। जिस प्रकार हमारे विचार और भावनाएँ अदृश्य होती हैं किन्तु हमारी वाणी और आवाज़ के रूप में उनकी अभिव्यक्ति होती है, ठीक उसी तरह अभीष्ट यह है कि हमारे शरीर और हमारे कर्मों के द्वारा हमारी आत्मा और उसकी पवित्रता प्रकट हो और उसके वास्तविक गुणों और विशेषताओं से लोग परिचित हों।

इस्लाम की दृष्टि में अध्यात्म का अर्थ कोई चमत्कार दिखाना कदापि नहीं है। वास्तविक अध्यात्म यह है कि आदमी भौतिक वस्तुओं और लौकिक सुख ही को सब कुछ न समझ ले। मनुष्य जड़ पदार्थ नहीं कुछ और है और मूल्य वास्तव में उसी का है। इसका हमें एहसास हो। यह तथ्य हमारा अनुभव बन जाए।

फिर जगत् का ही नहीं, आत्मा का स्रोत भी एक ईश्वर की सत्ता ही है। इसकी हमें समझ प्राप्त हो। जीवन और जगत् में जो कुछ पाया जाता है वह इसे प्रमाणित करता है कि एक सृष्टिकर्ता ईश्वर के बिना न जगत् की सृष्टि हुई है और न परमात्मा ईश्वर के बिना किसी आत्मा का अस्तित्व सम्भव है।

ईश्वर ने मनुष्य-जाति को श्रेष्ठता प्रदान की है। उसी के लिए जगत् का निर्माण हुआ है। क़ुरआन में है–

"हमने आदम की सन्तान (मनुष्यों) को श्रेष्ठता प्रदान की और उन्हें जल और थल में सवारी दी और अच्छी-पाक चीज़ों की उन्हें रोज़ी दी और अपने पैदा किए हुए बहुत-से प्राणियों की अपेक्षा उन्हें श्रेष्ठता प्रदान की।" (क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-70)

एक दूसरी जगह कहा गया है–

"क्या तुमने देखा नहीं कि अल्लाह ने, जो कुछ आकाशों में और जो कुछ धरती में है, सबको तुम्हारे काम में लगा रखा हैं और उसने अपनी प्रकट और अप्रकट अनुकम्पाएँ पूर्ण कर दी हैं? इसपर भी कुछ लोग ऐसे हैं जो अल्लाह (ईश्वर) के विषय में बिना किसी ज्ञान, बिना किसी मार्गदर्शन और बिना किसी प्रकाशमान किताब के झगड़ते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-31 लुक़मान, आयत-20)

मनुष्य को श्रेष्ठता और बड़ाई प्राप्त है, इसका कारण है और वह यह कि जगत् में मनुष्य ही की ईश्वर ने ऐसी रचना की है जो ईश्वर के लिए ऐसे दर्पण का काम दे सकता है जिसमें ईश्वर के अधिक-से-अधिक गुण प्रतिबिम्बित हो सकें। इसी लिए क़ुरआन में कहा गया है–

"अल्लाह का रंग ग्रहण करो, उसके रंग (गुण एवं स्वभाव) से अच्छा और किसका रंग हो सकता है? और (कहो :) हम तो उसी की बन्दगी करते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-138)

इससे मालूम हुआ कि अस्ल बन्दगी यही है कि हम अपने को ईश्वर के प्रतिकूल नहीं, अपने को उसके अनुरूप बनाने की चेष्टा करें। हम ईश्वर के विरोध में न खड़े हों, बल्कि अपने और उसके मध्य एकरूपता और अनुकूलता पैदा करें। वह पवित्र है, हममें भी पवित्रता हो, वह करुणावान है, हमारे अन्दर भी करुणा हो। वह दानशील और क्षमाशील है, हम भी दानशील हों, कृपावान हों और हमें भी दूसरों को क्षमा करना आता हो। वह महान है, हम उसकी महानता को स्वीकार करें और उसकी महानता के आगे

अपने को झुका दें।

क़ुरआन में ईश्वर को हक़ (सत्य) बल्कि अल-हक़ अर्थात् प्रत्येक पहलू से सत्य कहा गया है और कहा गया है कि स्पष्टतः सत्य है। क़ुरआन में है—

"... और भूमि को देखते हो कि सूखी पड़ी है। फिर जहाँ हमने उस पर पानी बरसाया कि वह फबक पड़ी और वह उभर आई और उसने हर प्रकार की शोभायमान चीज़ें उगाईं। यह इसलिए कि अल्लाह ही सत्य है और वह मुर्दों को जीवित करता है और उसे हर चीज़ का सामर्थ्य प्राप्त है।" (क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-6)

इस आयत में ईश्वर को हक़ अर्थात् सत्य कहा गया है। एक अन्य स्थान पर ईश्वर के बारे में कहा गया—

"अल्लाह ही सत्य है खुला हुआ, प्रकट करनेवाला।"

(क़ुरआन, सूरा-24 नूर, आयत-25)

हक़ या सत्य (Truth) की क्या विशेषताएँ होती हैं? ईश्वर के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के कथनों और क़ुरआन के अध्ययन और उसकी आयतों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि परम सत्य प्रत्येक गुण से विभूषित होता है। यदि उसमें अपेक्षित गुण न होंगे तो वे और कहाँ पाए जा सकते हैं। सत्य या परम सत्य ईश्वर के कुछ गुणों का उल्लेख हम यहाँ करना चाहेंगे।

सत्य वास्तविक (Fact) होता है। वह कोई भ्रम या मन की कल्पना मात्र कदापि नहीं होता। वह स्थाई और व्यापक होता है। परम सत्य ईश्वर एक ही है और एक ही हो सकता है। सत्यम् शिवम् (Good) एवं सुन्दर भी होता है और जीवन्त भी। वह रमणीय (Pleasant) होता है और प्रशंसनीय भी। वह इष्ट (Desirable) भी होता है और आनन्ददायक (Enjoyable) भी। उससे बढ़कर आदरणीय कोई दूसरा नहीं हो सकता और न अन्य कोई ऐसा है कि जिसकी वास्तविक रूप में कामना की जाए।

इस्लाम ने जो मार्गदर्शन किया है और उसने जिस पथ की शिक्षा दी है उसका सम्बन्ध ईश्वरीय गुणों, इच्छा और उसकी योजना से है। ईश्वर ने

अपनी जिस इच्छा और योजना के अन्तर्गत धरती में मनुष्य को बसाया है उसका ज्ञान पैग़म्बर के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। अपनी इच्छा, आदेश और योजना से अवगत कराने के लिए ही उसने पैग़म्बरों और नबियों को भेजा और अपनी किताबें उतारीं। पैग़म्बरों के सिलसिले की अन्तिम कड़ी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) हैं और ईश्वर की ओर से अवतरित अन्तिम किताब क़ुरआन है। इसका उल्लेख पहले भी हम कर चुके हैं।

ईश्वर की कृपा और अनुग्रह अपार है। उसके उपकार की गणना सम्भव नहीं। उसकी सबसे बड़ी कृपा और दयालुता हमारे लिए उसका मार्गदर्शन है। जीवन में ऐसे करुणावान ईश्वर और उसकी उपस्थिति की अनुभूति ही वास्तविक अध्यात्म है। संसार में प्रत्येक वस्तु ईश्वर की उपस्थिति का स्मरण कराती है। जिस तरह सूर्य की किरणों का सूर्य से गहरा सम्बन्ध होता है, उसी तरह हमारा सम्बन्ध अपने स्रष्टा ईश्वर से है। सूर्य की किरणें अपने उद्‌गम सूर्य की परिचायक हैं, ठीक उसी तरह हमारा अस्तित्व हमसे ज़्यादा हमारे ईश्वर का परिचायक है। हम पूर्ण रूप से ईश्वर पर निर्भर करते हैं, वही हमारा आधार है। किन्तु साधारणतया मनुष्य सांसारिक वस्तुओं को ही देखता है, उनसे हटकर अलौकिकता की ओर उसकी निगाह नहीं जाती। ध्यान की शिक्षा यह है कि हम संसार को अवश्य देखें किन्तु हम इससे पार भी जाएँ। ध्यान में मौन का बड़ा महत्व इसी लिए है कि इसमें इसका अवसर प्राप्त होता है कि हमें उसका भी आभास हो सके, जिसकी ओर साधारणतया हमारी दृष्टि नहीं जाती। ईश्वर के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने इसी लिए मौन को बहुत महत्व दिया है, उन्होंने कहा है कि मौन की दशा में मनुष्य पर हिकमत अर्थात् तत्वज्ञान (Wisdom) का इलहाम होता है। उन्होंने यह भी कहा है कि मौन (Silence) के आधिक्य और अच्छे स्वभाव और सुशीलता के सदृश कोई दूसरा कर्म नहीं हो सकता।

इस्लाम ने अध्यात्म ही की शिक्षा नहीं दी बल्कि मनुष्य को जीवन-क्षेत्र में उतरने का आदेश भी दिया है। दुनिया से अलग-थलग रहना यह जीवन से पलायन है। ऐसा अध्यात्म (Spirituality) इस्लाम में अभीष्ट नहीं जो हमें समाज से विलग करके रख दे।

इस्लाम और इबादत (पूजा एवं भक्ति)

नमाज़

इस्लाम में नमाज़, रोज़ा (व्रत), हज और ज़कात (दान) को धर्म का आधार ठहराया गया है। अध्यात्म की दृष्टि से इनका बड़ा महत्व है।

दिन और रात को मिलाकर पाँच बार नमाज़ अदा करनी अनिवार्य है। प्रातःकाल से लेकर रात तक पाँच बार ईश्वर के समक्ष खड़ा होने, उसकी स्तुति करने, उसके आगे झुकने और उसे सजदा करने अर्थात् उसके आगे बिछ जाने और प्रार्थना करने का आदेश दिया गया है। यह पाँच बार की नमाज़ मनुष्य को ब्रह्मवत बना देती है। उसका जीवन ईश्वरमय हो जाता है। उसे इसका आभास हो जाता है कि वह न ईश्वर से अलग है और न उसे ईश्वर से अलग होना चाहिए। नमाज़ के द्वारा मनुष्य दुनिया में रहते हुए ब्रह्म-लोक में निवास करने लगता है। फिर नमाज़ सबके साथ मिलकर अदा की जाती है। इससे हमारा आपस का सम्बन्ध सुदृढ़ होता है और हमारे सम्बन्ध में मधुरता आ जाती है।

हम जानते हैं कि ईश्वर देश-काल से परे है। वह समयातीत है। वह किसी स्थान और जगह (Place) पर आश्रित नहीं। उसके समक्ष जाने, उससे प्रार्थना करने और उसे सजदा करने का अर्थ यह होता है कि मनुष्य पाँच बार समय और स्थान से परे हो जाता है। जो व्यक्ति एक दिन में पाँच बार समय को लाँघ जाता है और वहाँ पहुँचता है जो कोई स्थान नहीं है जो सर्वथा विशुद्ध और आत्मिक लोक है। ऐसे व्यक्ति की विशुद्धता, पवित्रता और उच्चता में सन्देह नहीं किया जा सकता। शर्त यह है कि आदमी नमाज़ पूर्णरूप से समझकर अदा करे। समझ ही असल ध्यान है जैसा कि साधकों और विचारकों का मत है।

नमाज़ की एक विशेषता यह है कि यह होश के साथ ही अदा की जा सकती है। बेहोशी के साथ नमाज़ नहीं अदा की जा सकती। आदमी का होशपूर्ण रहना ही अभीष्ट है। ध्यान में भी होश का रहना ज़रूरी है। नींद में होश नहीं रहता, इसलिए नींद की हालत को ध्यान नहीं कहा जाता।

वस्तुतः ध्यान वही है जिसके साथ होश हो। नमाज़ होशपूर्वक ही अदा की जाती है। अध्यात्म होश को बढ़ाता है। वह होश को कम नहीं करता। यदि हमें होश के साथ जीना आ जाए और हम चीज़ों को सही ढंग से देख सकें तो हमारा सम्पूर्ण जीवन ध्यान बन जाए और फिर सत्य हमसे छिपा नहीं रह सकता। सत्य तो पूर्ण रूप से प्रकट है दुनिया की हर चीज़ सत्य की गवाही दे रही है, किन्तु हम इससे ग़ाफ़िल होते हैं। क़ुरआन में जगत् की प्रत्येक वस्तु को अल्लाह की निशानी कहा गया है।

रोज़ा (व्रत)

नमाज़ के बाद दूसरी इबादत (बन्दगी) रोज़ा या व्रत है। वर्ष में एक महीने का रोज़ा अनिवार्य है। रोज़ा अरबी महीने रमज़ान में सामूहिक रूप से रखा जाता है। रोज़े की हालत में दिन में खाना-पीना और पति-पत्नी-प्रसंग वर्जित है। रोज़े में ज़्यादा-से-ज़्यादा ईश्वर को याद करना, क़ुरआन का पाठ करना और व्यर्थ की बातों और गुनाहों से बचना ज़रूरी होता है। रोज़ा संयम और आत्म-नियंत्रण में सहायक होता है। सामूहिक रूप से रोज़ा रखने से समाज में पवित्रता और पारस्परिक सम्बन्धों में मधुरता आ जाती है। आपस में प्रेम और सहयोग की भावना पैदा होती है।

रोज़े से एक बड़ी शिक्षा यह मिलती है कि आदमी पर इस सत्य का उद्घाटन होता है कि जीवन में खाने-पीने और सुख-सुविधा के अतिरिक्त भी कोई चीज़ है और वह है ईश्वर का स्मरण और उसे अपने जीवन में शामिल देखना। रोज़ा या व्रत से इसका भी ज्ञान होता है कि हम में और पशुओं में अन्तर होना चाहिए। केवल खाने-पीने और पति-पत्नी-प्रसंग को ही सब कुछ समझ लेना पशु-स्तर पर जीना है। मनुष्य पशु-स्तर पर जीने के लिए नहीं पैदा किया गया। मनुष्य तो वास्तव में शाश्वत आनन्द (Eternal Happiness) के लिए पैदा हुआ है, जबकि पशु शाश्वत आनन्द के लिए पैदा नहीं किए गए हैं। वे तो संसार में मनुष्य की सेवा के लिए ही पैदा किए गए हैं।

ज़कात (दान)

नमाज़, रोज़ा के अतिरिक्त एक मौलिक आदेश ज़कात के अदा करने

का है। आदमी के माल और धन या सम्पत्ति में निर्धनों, ग़रीबों दीन-दुखियों और ज़रूरतमन्दों का भी हिस्सा है। इसके अतिरिक्त धार्मिक और अच्छे नेक कामों पर भी अपना धन ख़र्च करना चाहिए। अपने धन को केवल अपने निजी कामों में ही ख़र्च करना और अपने उन भाइयों को भूल जाना जो निर्धन और असहाय हैं, धर्म और हृदय की उस कोमलता के विरुद्ध आचरण है जो मानवता का विशिष्ट गुण है। स्वार्थपरता और कृपणता को किसी ने भी अच्छा नहीं कहा है। अध्यात्म या धर्म वास्तव में मन का सूक्ष्म व्यापार है। यह एहसास की पवित्रता और कोमलता है। संवेदनशीलता के बिना मनुष्य को मनुष्य नहीं कहा जा सकता। मन या हृदय के सूक्ष्म व्यापार का रुख़ जब ईश्वर की ओर होता है तो ईश-प्रेम, भक्ति, आत्मसमर्पण की भावना का आविर्भाव होता है और जब इसका रुख़ मानवों की ओर होता है तो करुणा, प्रेम, सहानुभूति और लोक-सेवा आदि की भावना पैदा होती है। एक ही चरित्र है जिसके ये दो रुख़ हैं। जो ख़ुदा के बन्दों से प्रेम नहीं करता वह ख़ुदा से भी प्रेम नहीं कर सकता। क्योंकि चरित्र का विभाजन सम्भव नहीं। इसी तथ्य के अन्तर्गत अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने कहा है कि–

> "जो मानवों का कृतज्ञ नहीं होता, वह ईश्वर का भी कृतज्ञ नहीं हो सकता।" (हदीस)

ज़कात से समाज के अतिरिक्त स्वयं ज़कात देनेवाले व्यक्ति को विभिन्न प्रकार के लाभ होते हैं। ज़कात आदमी के व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक है। इससे आदमी की आत्मा विकसित होती है। उसमें दानशीलता का विकास होता है। कृपणता और लोभ-लालच से उसे छुटकारा मिलता है और आध्यात्मिकता का मार्ग प्रशस्त होता है। फिर दानशीलता ईश्वर का विशेष गुण है और यह जीवन का भी विशिष्ट गुण है। जहाँ जीवन होगा वह दानशीलता के साथ होगा। वृक्ष जीवित होता है तो फल देता है और छाया भी, किन्तु वृक्ष यदि सूख गया तो फिर न उससे फल प्राप्त कर सकते हैं और न छाया ही। ईश्वर जीवन्त सत्ता है उससे बढ़कर दानशील कोई नहीं हो सकता। उसकी दानशीलता का प्रत्यक्ष प्रमाण यह जीवन और जगत् है।

जीवन और दानशीलता का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। जहाँ जीवन होगा वहाँ कृपणता नहीं, दानशीलता होगी। दानशीलता ईश्वर का विशिष्ट गुण है, वह जीवन्त सत्ता है। इससे स्पष्ट होता है कि ज़कात का मानवता से ही नहीं, अध्यात्म से भी गहरा सम्बन्ध है। ज़कात मन की कोमलता का आहार है।

हज

सामर्थ्यवान के लिए जीवन में एक बार हज करना अनिवार्य है। हज में मक्का नगर पहुँच कर काबा के दर्शन एवं कुछ अनिवार्य कृत्य करने होते हैं। काबा वह घर है जो एकेश्वरवाद का केन्द्र है। यहाँ ईश्वर की विशिष्ट दिव्य-ज्योति का आभास होता है। हज में काबा की परिक्रमा करते हैं। यह इस भावना का प्रदर्शन है कि धर्म कोई शुष्क चीज़ नहीं है बल्कि यह प्रेम का अतिरेक है। यह ईश्वर से गहरे प्रेम का प्रदर्शन है। हज में हाजियों को सफ़ा और मरवा नामक पहाड़ियों के बीच दौड़ लगानी होती है। यह इस बात को ज़ाहिर करता है कि धर्म प्रेम, आसक्ति और अनुराग ही नहीं यह जिहाद भी है। यह असत्य के विरुद्ध संघर्ष भी है। हाजियों को एक विशेष जगह कंकरियाँ मारनी होती हैं। यह वह जगह है जहाँ अबरहा और उसकी सेना को ईश्वर ने विनष्ट कर दिया था। अबरहा ने दल-बल के साथ काबा को ढा देने के लिए आक्रमण किया था। उसे मुँह की खानी पड़ी। कंकरी मारकर इस विश्वास को ताज़ा किया जाता है कि वह ईश्वर आज भी सत्य की रक्षा के लिए मौजूद है जिसने अपने शत्रु को विनष्ट करके रख दिया था। ईश्वर के मुक़ाबले में उसकी ताक़त और उसकी सेना उसके कुछ काम न आ सकी।

हज के एक विशेष दिन जानवर की क़ुरबानी की जाती है। यह क़ुरबानी हज़रत इबराहीम (अलै॰) की अनुपम क़ुरबानी की यादगार है। हज़रत इबराहीम (अलै॰) ईश्वर की प्रसन्नता के लिए अपने इकलौते बेटे इसमाईल (अलै॰) को क़ुरबान करने के लिए तैयार हो गए थे। यह क़ुरबानी ईश्वर के यहाँ स्वीकृत हुई। ईश्वर ने इसमाईल (अलै॰) को बचा लिया और उनके बदले जानवर क़ुरबान करने का संकेत हुआ। क़ुरबानी का अर्थ यह है कि हमारा धन ही नहीं हमारे प्राण भी ईश्वर के लिए अर्पित हैं। हम उसके मार्ग

में यदि ज़रूरत हुई तो अपने प्राण भी दे सकते हैं।

हज का विशिष्ट अंग अरफ़ात के मैदान में एक विशेष तिथि को समस्त हाजियों का एक साथ एकत्र होना है। यह हज से सम्बन्धित विशिष्ट कर्म है जो हाजियों के लिए अनिवार्य है। अरफ़ात के मैदान में यदि हाजी नियत दिन को नहीं पहुँच सका तो उसका हज नहीं होगा। उसे दूसरे वर्ष फिर हज की यात्रा करनी होगी। अरफ़ात के विस्तृत मैदान में समस्त हाजियों का एक साथ एकत्र होना वास्तव में इसका पूर्वाभ्यास या प्रदर्शन है कि क़ियामत के दिन सारे मनुष्यों को एक साथ ईश्वर के समक्ष हाज़िर होना होगा और उस दिन प्रत्येक व्यक्ति के विषय में अन्तिम निर्णय होगा कि उसका ठिकाना कहाँ है। उसे ईश्वर के निकट स्थान मिलेगा जहाँ वह सब कुछ प्राप्त होगा जिसकी कोई कामना करे या उसका ठिकाना दोज़ख़ (नरक) है जिसमें यातना, दुख और संताप के अतिरिक्त और कुछ न होगा। वह ईश्वर के प्रकोप में ग्रस्त होगा। वह ऐसा अपराधी ठहरेगा जिसका अपराध अक्षम्य हो। उसे इसका अवसर न मिल सकेगा कि वह ईश्वर को प्रसन्न कर सके। उस दिन यह ज़ाहिर हो जाएगा कि प्राणियों में कौन उत्तम (The best of creatures) है और कौन निकृष्ट (The worst of creatures)। (क़ुरआन, सूरा-98 बैयिनात, आयात-7-8)। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हज धार्मिकता और आध्यात्मिकता का चरमोत्कर्ष (Climax) है। हज के द्वारा इसका प्रदर्शन होता है कि मनुष्य की नीयति क्या है? वह क्या है और कहाँ के लिए पैदा किया गया है?

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि अध्यात्म के विषय में इस्लाम का दृष्टिकोण क्या है। इस्लाम में अभीष्ट यह है कि मनुष्य में समझ पैदा हो। वह ईश्वर की निर्धारित उस योजना से अनभिज्ञ न रहे जिसके अन्तर्गत उसकी सृष्टि हुई है। फिर उसका आचरण ईश्वरीय योजना के अनुकूल हो, उसके विरुद्ध कदापि न हो। उस पर यह स्पष्ट हो कि उसके वर्तमान का उसके वास्तविक भविष्य अर्थात परलोक से क्या सम्बन्ध है। उसे यह भी ज्ञात हो कि वर्तमान जीवन में आत्मा की शान्ति और आत्मिक आनन्द के लिए ईश्वरीय मार्गदर्शन और ईश्वर की शिक्षाएँ क्या हैं। क़ुरआन से विदित

है कि आध्यात्मिक उपलब्धि के अभाव में मनुष्य की दशा उस घर के जैसी है जिसमें अन्धकार डेरा जमाए हुए हो और कोई जलता हुआ दीपक उस घर में न पाया जाता हो या उसकी मिसाल उस कुएँ के जैसी है जो जलविहीन हो। क़ुरआन एक ओर इसपर ज़ोर देता है कि मनुष्य को समझ (Awareness) प्राप्त हो और वह सर्वथा प्रकाश में हो। केवल बाह्य प्रकाश ही नहीं बल्कि उसे आन्तरिक प्रकाश (Inner Light) प्राप्त हो और यह प्रकाश उसके व्यक्तित्व का अंग ही नहीं बल्कि पर्याय बन जाए। क़ुरआन में उल्लिखित यह प्रार्थना अत्यन्त मार्मिक है—

"ऐ हमारे रब, हमारे प्रकाश को हमारे लिए परिपूर्ण कर दे और हमें क्षमा कर।" (क़ुरआन, सूरा-66 तहरीम, आयत-8)

क़ुरआन में एक अन्य जगह कहा गया है—

"जो लोग ईमान ले आए ईश्वर उनका संरक्षक मित्र है। वह उन्हें अँधेरों से निकालकर प्रकाश की ओर ले आता है।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-257)

आत्मा और परमात्मा में बड़ी एकात्मता पाई जाती है। मनुष्य का आत्मिक प्रकाश प्रज्वलित होता है। ईश्वरीय प्रकाश से उसका स्पर्श ऐसा है जैसे प्रकाश पर प्रकाश (Light upon Light)।

(क़ुरआन, सूरा-24 नूर, आयत-35)

इस्लाम का उद्देश्य है कि मनुष्य मात्र जड़ पदार्थ बनकर न रहे। उसे अपने आत्मिक प्रकाश का बोध हो। आत्मा स्वयं प्रकाश है। ईश्वर के लिए भी यदि कोई मिसाल दी जाती है तो वह प्रकाश ही है। वह जीवन्त प्रकाश है। वही जीवन और जगत् की शोभा और सौन्दर्य है (क़ुरआन, सूरा-24 नूर, आयत-35)। ईश्वर का ज्ञान और उसका स्मरण ही है जिससे हृदय को परितोष और शान्ति प्राप्त हो सकती है। (क़ुरआन, सूरा-13 रअद, आयत-28)

ईश्वर की ओर उन्मुख होने और आत्म-ज्ञान के लिए साधकों और सूफ़ियों ने कुछ वैध विधियों से काम लिया है। उनकी अपनी उपयोगिता है। इससे इनकार नहीं किया जा सकता, किन्तु वे विधियाँ अनिवार्य नहीं हैं। यदि हृदय विशुद्ध और जागृत हो और आदमी को सत्य की प्यास हो तो उस

पर ईश्वर की कृपा अवश्य होगी और आध्यात्मिक उपलब्धियों से वह वंचित नहीं रह सकता। ज़रूरत समझ और सहज प्रयास की है, कठिन तपस्या की नहीं। इस्लाम तो इसी लिए है कि वह लोगों को इससे अवगत कराए कि जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है और उन अनुचित बन्धनों से लोगों को मुक्त करे जिनमें लोग जकड़े हुए हों और अनावश्यक बोझ को उनपर से उतार दे जिनके नीचे वे दबे हुए हों।

(देखें क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-157)

अपनी वास्तविक पहचान और ईश्वर के अंग-संग होने (Presence of God) का ज़िन्दा एहसास इससे बढ़कर जीवन की परम निधि और क्या हो सकती है। ईश्वर जो हमारा प्रभु और प्रेम-पात्र है उसकी ओर उन्मुख और ब्रह्मवत रहना ही जीवन का वास्तविक सौन्दर्य है।

यह ध्यान में रहे कि यदि मनुष्य एक ईश्वर का होकर नहीं रहता और उसके आराध्य और प्रेम-पात्र या इष्ट प्रभु कई हों यह तो कोमल और पवित्र सम्बन्ध के प्रति बेवफ़ाई है जिसे घृणित ही कहा जाएगा। होना यह चाहिए कि मनुष्य का ईष्ट-प्रभु एक हो और वह उसकी चेतना बन जाए। वह ईश्वर से अपना मधुर एवं सुन्दर सम्बन्ध निरन्तर बनाए रहे। ईश्वर से बढ़कर उसका कोई प्रिय न हो। ईश्वर हमारे जीवन को सरल, मधुर और रसमय बनाता है। ईश्वर से यदि हम सच्चा सम्बन्ध बना सकें तो उसकी ओर से शान्ति और आनन्द की वर्षा निरन्तर हमपर होती रहेगी। ईश्वर के अलौकिक स्पर्श से हमें वह तरंग और मस्ती प्राप्त होगी जो किसी मदिरापान से सम्भव नहीं। जो लोग ईश-प्रेम भाव के साथ जीवन व्यतीत करते हैं उन्हीं का जीवन वास्तव में जीवन है। वे लौकिक जीवन में भी अलौकिकता के शिखर पर होते हैं।

पाठकों से हम आशा करते हैं कि वे जीवन के आध्यात्मिक पहलू की उपेक्षा न करके गम्भीरता से इसपर विचार करेंगे। सम्भव है उनका जीवन एक पुष्प के सदृश खिल जाए जिसकी सुगन्ध चारों ओर फैल सके।